बीच सफ़र में



डॉ. नरेंद्र

बीच सफ़र में



डॉ. नरेंद्र

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: अक्टूबर, 2024

© डॉ. नरेंद्र

बयान

हिन्दी में भी ग़ज़लें लिखी जा सकती हैं या लिखी जा रही हैं, इसका मुझे कतई इल्म न था। मैं तो अपनी कविताओं में ही मस्त था। हिंदी में भी और मैथिली में भी। अस्सी के दशक तक देश की राजनीति में ज़बरदस्त उथल पुथल मची हुई थी।एक तरफ़ नक्सलबाड़ी का किसान आंदोलन, जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में छात्र युवाओं की सम्पूर्ण क्रान्ति, निरंकुश इंदिरा सत्ता द्वारा थोपा गया आपातकाल आदि का देश के तमाम सजग और संवेदनशील साहित्यकार की तरह मैं भी एक गवाह था। मैं भी उन परिस्थितियों को अपने साहित्य के आईने में ढालने का प्रयास कर रहा था।

तभी मासिक पत्रिका सारिका के एक अंक में तत्कालीन संपादक कमलेश्वर की आकर्षक टिप्पणी के साथ दुष्यंत कुमार की कुछ ग़ज़लें छप कर आयीं। मैं पढ़ कर झूम उठा। मुझे इस विधा के इस नितांत नये तेवर ने इतना प्रभावित और सम्मोहित किया कि मैं तभी से इस विधा का हो कर रह गया।हो क्या गया तत्काल ही हाथ आज़माने लगा। बाबा नागार्जुन के शब्दों में कहें तो यही आग मैं खोज रहा था।उसी का नतीजा था कि सबसे पहले सारिका में उसके बाद अन्य पत्र पत्रिकाओं में भी ग़ज़लें भेजने लगा।छपने भी लगा। तभी से यह सफ़र जारी है।

मेरे लिए ग़ज़ल के बुनियादी उसूल माने तो रखते हैं मगर रूपवादियों और भाववादियों की तरह इस हद तक नहीं कि कलाबाज़ी के चक्कर में कहन ही बिला जाये। मेरे लिए कहन अहम है, बनावट या बुनावट नहीं। मैंने कभी मीटर पर या नापनी में डाल

कर भी ग़ज़लें नहीं कहीं।जिनके लिए पैमाना महत्वपूर्ण है वह अपना नापते रहें। मुझे अपने कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए जिस तरह से बन पड़ा कहा।अब शुद्धतावादी मीन मेख या नुक्ता चीनी करते रहें। मुझे मज़ा आता है आलोचना के उनके घिसे पिटे औजार की कवायद पर।उनकी इस नादानी पर कि अव्वल तो हिन्दी में लिखी जा रही इस नये मिजाज़ की ग़ज़लों की परख उर्दू के रिवायती पैमाने से करना ही बेमानी है। दूसरी बात कि साहित्य किसी व्याकरण के खांचे में नहीं बल्कि व्याकरण को साहित्य के हिसाब से अपना खांचा तय करना पड़ता है। मगर यह सब भी हम जैसे सामान्य साहित्यकारों की चिंता नहीं है। इसके लिए बड़े बड़े एकेडमिशियन और प्रकांड पंडित लोग तो हैं ही।हम क्यों माथा पच्ची करें।

बहरहाल, मैं अच्छा या बुरा, जनोपयोगी या बेकार जो भी और जैसा भी लिखता आ रहा हूं इसका भी एक लम्बा अरसा हो गया।शायद चार दशक।इस बीच चार चार ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुए। पाठकों और मित्रों का भरपूर प्यार भी मिला।अब यह संग्रह छात्र जीवन के सर्वाधिक प्रिय साहित्यिक मित्र अजय ब्रह्मात्मज जी के सौजन्य से प्रकाशित हो रहा है।उनका हृदय तल से आभार।आपकी अदालत में पेश है यह पांचवां संग्रह बीच सफ़र में। फ़ैसला आपका शिरोधार्य।

डा. नरेन्द्र

दिग्घी पश्चिम, दरभंगा

अनुक्रम

पत्थर को गलाने की सज़ा भोग रहा हूँ	8
एक दूजे का सहारा चाहिए	9
क़ाफ़िया तंग हुआ जाता है	11
कभी है राम ख़तरे में कभी रहमान ख़तरे में	12
धर्म का व्यापार कितना गर्म है	13
न अब पुजारी कहीं है न वो नमाज़ी है	14
और बनना हो चाहे जो बनिए	15
हर एक ज़ुबान पे अब एक ही फ़साना है	16
कोरे बकवासों में कुछ भी गुनना मुश्किल है	18
मुसलसल जंग का इक सिलसिला है	19
मुंह छुपाना मुझे नहीं आया	20
मेरी आँखों में कोई शाहे ख़ूबाँ तो अब भी है	22
बहुत झेले हैं हमने पेचो ख़म को	23
ना राम करेगा न ये रहमान करेगा	25
आपको भी मिले एक अरसा हुआ	26
ज़िन्दगी से प्यार है तो हद में रहना सीख ले	28
कभी हँस कर कभी रो कर रिझायेगा जोकर	29
बिगड़ी हुई सियासत बिगड़ा निज़ाम है	30
आदमी जंगल में सोचो फिर से रह पायेगा क्या	31

भाग जाने का हुनर हो आप में 32

तुझसे नज़रें तो मिलायेंगे हज़ारों आशिक़ 33

उसूलों से बग़ावत ख़ुद ही करिये 34

हज़ारों हसरतें हैं दफ्न मेरे दिल के आंगन में 35

अक्सर उसको सोच के खुश हो लेते हैं 36

हर जगह काई है काई से बच नहीं सकते 37

आदमी पस्तहाल है अब भी 38

सब ज़हन के फिरे नहीं होते 39

थके मांदे ज़रा आराम में हैं 41

नये अवतार में आये हैं चंदन ठोप लेकर के 42

कोई रूठे तो वह मना लेंगे 43

अपने पैरों पर तो वह भी खड़ा नहीं है 44

पढ़ लिख के भी इस मुल्क में बेकार बहुत हैं 45

जीवन भर जीने की कोशिश रहती है 46

अब और भी खुल कर के दमन वो चलायेंगे 47

रिश्त ए ख़ून पराये की तरह लगता है 48

फ़रेब, झूठ से, तिकड़म से, खींचातानी से 49

वो जनता को रिझाने में लगे हैं 50

मुँह कभी खोलना नहीं आता 51

तुम्हारा आज क्या वो कल चुरा लेंगे 52

धीरे - धीरे यह तिलिस्म भी टूटेगा ही 53

झूठ ही झूठ की अब चलती है 54

रात के बाद दिन ही आता है 55

सुना पक्की सड़क बनवा रहे हैं 56

सबकी मिलीभगत है इसमें मिलजुल कर सबने खाये हैं 58

तुम्हारी चौकसी धरी ही रह जायेगी 59

ये जो तेरे साथ खड़े हैं 60

इक सियासी प्रचार लगता है 61

देखते ही देखते सबके दिलों पर छा गये 62

खेत पर हक़ है, हक़ खदानों पर 63

न जाने निगाहों को क्या हो गया है 64

देख रही सारी आबादी 65

क़लम जब तक दरिन्दों का यहाँ कुछ सर नहीं होगा 66

हम करामात, करिश्मात से नहीं डरते 67

मुझमें थोड़ी सी जो आवारगी नहीं होती 69

माना हम कुछ कम लिखते हैं 70

उनके जैसा नहीं बवाली हैं 71

एक ये ही यहाँ के जाये हैं 72

ये उनकी ज़िद है कि तूफ़ान बन के निकलेंगे 73

हाले दिल अपना तुम बताओ तो 74

सारी खुशियाँ कहर में बदलने लगीं 75

झूठ सुनने का मुल्क़ आदी है 76

अभी जो तेज़ चकाचौंध सा उजाला है 78

माना कि हम ग़रीब हैं पर चोर नहीं हैं 79

तुम जवानी में हो कितने बेदम 80

कहने को आज़ाद हैं मगर तख़्तो ताज वही है 81

अब मात खा रहे हैं वो अपनी ही चाल से 82

दुनिया की तमाम माँओं को सप्रेम समर्पित 83

अब नयी तामीर होनी चाहिए 85

सच जो है दर पेश नहीं 87

बहुत मुश्किल है दुनिया को बदलना 88

जो ज़िन्दा हैं वो मारे जा रहे हैं 89

आख़िर ये कितनी जानों को क़ैद करेंगे 90

इंसानों को पत्थर, पत्थर को भगवान बना देगा 91

पत्थर को गलाने की सज़ा भोग रहा हूँ

पत्थर को गलाने की सज़ा भोग रहा हूँ
इस दिल को जलाने की सज़ा भोग रहा हूँ।
अपमान, घुटन और अविश्वास जनम भर
इस सर पे उठाने की सज़ा भोग रहा हूँ।
उसने रिहा किया तो अजब हादसा हुआ
हर रोज़ रिहाई की सज़ा भोग रहा हूँ।
कैसे कहूँ कि वो भी गुनहगार नहीं हैं
जिनकी वफाई की मैं सज़ा भोग रहा हूँ।
वो पुल की तरह मुझको इस्तेमालते रहे
मैं पार लगाने की सज़ा भोग रहा हूँ।
जब धुंध सी छायी थी तो बेताब बना था
अब रौशनी पाने की सज़ा भोग रहा हूँ।

****